VRI Series No. 116

सम्यक धर्म

सत्यनारायण गोयन्का

विपश्यना विशोधन विन्यास,
धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२ ४०३,
महाराष्ट्र, भारत

विपश्यनाः एक परिचय

श्री गोयन्काजी ने म्यंमा के महान विपश्यना आचार्य सयाजी ऊ बा खिन से सर्वप्रथम सन १९५५ में 'विपश्यना' की साधना सीखी। तब से अभ्यास का क्रम जारी रहा। सन १९६९ में भारत आये। व्यापार-धंधे से सर्वथा अवकाशग्रहण कर भारत के विभिन्न स्थानों पर **विपश्यना** साधना-विधि के दस दिवसीय शिविर लगाते रहे। सन १९७६ में प्रमुख विपश्यना केंद्र 'धम्मगिरि' की स्थापना के पश्चात अब तक पूरे विश्व में लगभग ५० विपश्यना केंद्र स्थापित हो चुके हैं तथा अन्य नए-नए केंद्र खुलते चले जा रहे हैं, जहां साधकों के लिए निःशुल्क निवास तथा भोजनादि की स्थाई व्यवस्था रहती है। विपश्यना सिखाने का सारा खर्च कृतज्ञ साधकों के दान पर निर्भर होता है। शिविरों का संचालन पूज्य गोयन्काजी तथा उनके द्वारा नियुक्त विश्व भर के लगभग ४०० से अधिक सहायक आचार्यों द्वारा किया जाता है। शिविर-काल के दौरान साधकों को बाहरी संपर्क से दूर, केंद्रों पर ही रहना अनिवार्य होता है।

भगवान गौतम बुद्ध द्वारा गवेषित 'विपश्यना' विद्या सर्वथा संप्रदायहीन एक प्रयोग प्रधान विधा है जिसमें अपने भीतर की सच्चाई का दर्शन करते हुए अपने मन को निर्मल बनाना तथा ऋत यानी प्रकृति के नियम के अनुसार आचरण करने का अभ्यास किया जाता है। इसी को धर्म कहते हैं। कालांतर में हम **धर्म** शब्द का सही अर्थ भूल गये और संप्रदाय को ही धर्म मानने लगे। आज जबकि धर्म के नाम पर चारों ओर इतनी अराजकता फैली हुई है, यह सांप्रदायिकता-विहीन विद्या घोर अंधकार में प्रकाश-स्तंभ सदृश है।

ध्यान की यह विद्या सीखने के लिए हर संप्रदाय के लोग – चाहे वे हिंदू हों या मुस्लिम; जैन, ईसाई, बौद्ध हों या सिक्ख – सभी आते हैं। बच्चों से लेकर वृद्ध बुजुर्गों तक सब उम्र के लोग आते हैं। बहुत ऊंची शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी आते हैं तो दूसरी ओर बिल्कुल निरक्षर अनपढ़ लोग भी आते हैं। अत्यंत धन-संपन्न भी आते हैं और बिल्कुल धनहीन भी। पुरुष-नारी तथा डॉक्टर, वकील, इंजीनियर, व्यापार-उद्योगों के संचालक सभी आते हैं। किसी भी विपश्यना शिविर में समाज के हर वर्ग का यह अनूठा संगम आसानी से देखा जा सकता है। इतनी विविधताओं के होते हुए भी सभी लोग लाभान्वित होते हैं।

पूज्य श्री गोयन्काजी का यह लेख अधिक से अधिक लोगों को धर्म-मार्ग पर चल सकने के लिए प्रेरणा प्रदायक सिद्ध हो, यही मंगल भावना है।

विपश्यना विशोधन विन्यास.

मूल्यः रु. १/-

प्रकाशक :

विपश्यना विशोधन विन्यास

धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२४०३, जिला- नाशिक , महाराष्ट्र, भारत

फोनः ०२५५३- २४४०७६, २४४०८६, २४४३०२ फैक्सः ०२५५३- २४४१७६.

सम्यक धर्म

सम्यक माने ठीक, सही, यथार्थ, सत्य। अतः सम्यक धर्म माने सत्य धर्म, सत धर्म, सद्धर्म। ऐसा धर्म जिसमें मिथ्यातत्व को कहीं स्थान नहीं, जिसका कल्पनासे कोई वास्ता नहीं। यदि कोई उपदेशक किसी मिथ्या बात को, मिथ्या ही क्यों सही बात को भी अंधश्रद्धा से महज कल्पना के स्तर पर मान लेने का आग्रह करे तो समझो वह सम्यक नहीं, मिथ्या धर्म का उपदेश कर रहा है।

सम्यक माने शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल, निर्दोष, निष्कलुष। अतः सम्यक धर्म माने शुद्ध धर्म, ऐसा जिसमें पाप के लिए किंचित भी स्थान नहीं। जिसका जोर-जबरदस्ती से कोई वास्ता नहीं। धर्म निर्मल होता है तो सहज स्वीकार्य होता है, क्योंकि न्यायसंगत होता है, युक्तिसंगत होता है। कोई उपदेशक कहे कि मेरी बात ननु-नच किए बिना, तर्क-वितर्क किए बिना, अक्ल की दखल दिए बिना आंख मूंद कर इसलिए मान लो कि न मानने पर कोई अदृश्य सत्ता तुम्हें असह्य नारकीय यंत्रणा का दंड देगी और मान लेने पर प्रसन्न होकर तुम्हारे सारे पाप भुला देगी और स्वर्ग के सुख का वरदान देगी तो समझो वह सम्यक नहीं, मिथ्या धर्म की छलना है। सम्यक माने अक्षत, अखंड, अविकल, पूर्ण। सम्यक धर्म माने परिपूर्ण परिपक्व धर्म। धर्म की परिपूर्णता, परिपक्वता उसे पूरी तरह धारण कर लेने में है। महज पठन-पाठन, चर्चा-परिचर्चा धर्म की अविकल्प परिपूर्णता नहीं है। बुद्धि-क्रीड़ा और बुद्धि-रंजन धर्म की पूर्ण परिपक्वता नहीं है। पढ़े-सुने धर्म का चिंतन-मनन करके उसे सम्यक रूपेण धारण कर लेना, जीवन का अंग बना लेना, सहज स्वभाव बना लेना ही उसकी परिपूर्णता है, परिपक्वता है। यही धर्म का सम्यकत्व है। कोई उपदेशक कहे कि मेरी वाणी को सुन लेने मात्र से अथवा अमुक धर्मग्रंथ को पढ़ लेने मात्र से अथवा अमुक दार्शनिक सिद्धांत को स्वीकार कर लेने मात्र से तुम्हारी मुक्ति हो जायगी, धर्म धारण न भी करो तो भी अदृश्य सत्ता इसी बात पर तुम पर रीझ कर तुम्हारे सारे पाप धो देगी, तो समझो कि धर्म सम्यक नहीं, मिथ्या है, मायावी है।

सत्य, स्वच्छ धर्म जीवन में उतरना ही चाहिए –तो ही सम्यक है, कल्याणप्रद है अन्यथा भ्रामक है, दुखदायी है। जिस किसी को धर्म के सम्यक स्वरूप का जरा भी बोध हो जाता है वह सदैव इस भ्रांति से बचने का प्रयत्न करता है। धर्म को रूढ़ि-पालन और बुद्धि-किलोल का विषय नहीं बनने देता। सारा बल धारण करने के अभ्यास में ही लगाता है। इस संबंध में हमारे देश की एक बहुत उज्ज्वल पुरातन कथा है। कुरुप्रदेश का एक बालक, राजकुमार युधिष्ठिर। अन्य राजकुमारों के साथ उसे भी गुरु से दो छोटे-छोटे वाक्यों में धर्म के उपदेश मिले। औरों ने

उन वाक्यों को रट कर गुरु महाराज की शाबाशी शीघ्र सहज हासिल कर ली। पर उस बालक के लिए तो सम्यक धर्म ही सही धर्म था। वह उसे धारण करने के अभ्यास में दिन बिताने लगा और इस कारण नासमझ गुरु के कोप का भाजन हुआ। दंड मिला सम्यक मार्गी सुबोध राजकुमार को, जबकि दोषी था दुर्बोध आचार्य। पर बेचारा आचार्य भी क्या करता? रूढ़ियों का, परंपराओं का शिकार था। छिलकों को धर्म मानने का आदी था। उसके लिए तो धर्म के ये छिलके ही अधिक मूल्यवान थे। इन राजकुमारों को धर्म के कुछ बोल सिखा दूंगा। वे रट कर याद कर लेंगे। घर पर माता-पिता पूछेंगे – पाठशाला में क्या पढ़ा? तो विद्यार्थी रटे हुए उन धर्म-वाक्यों को तोते की तरह सुना देंगे। मां-बाप खुशी से फूल उठेंगे। आचार्य का श्रम सफल माना जायगा। वह पुरस्कृत होगा। आजीविका सुगमतापूर्वक चलती रहेगी। धर्म पढ़ने-पढ़ाने का यही मूल्य था उसकी नजरों में। धर्म का यह ओछा और छिछला मूल्यांकन न जाने कब से चला आ रहा है। आज भी कायम है और लगता है भविष्य में भी चलता ही रहेगा। पढ़ना, सुनना व याद कर लेने का काम सरल है, पर जीवन में उतारने का काम कठिन है। अत्यंत कठिन है। इस कठिन को कोई नहीं करना चाहता। यही कारण है कि हम धर्म के नाम पर अधिकतर मिथ्याधर्म के ही शिकार बने रहते हैं। सम्यक धर्म हमसे कोसों दूर रहता है। समीप आए भी तो कैसे? जब मिथ्या को ही सम्यक मान बैठते हैं तो मिथ्या प्रमुख हो जाता है, सम्यक गौण। अतः सम्यक को समीप लाने का कोई प्रयत्न भी तो नहीं करते।

काया, वाणी और चित्त के सभी कर्मों में धर्म समा जाय तो ही सम्यक हो। यदि इसी को जीवन का चरम लक्ष्य मान कर अभ्यास में जुट जायँ तो जितनी-जितनी सफलता मिले, उतना-उतना लाभ हो। पूरी सफलता मिल जाय तो निस्संदेह पूरा लाभ हो। सर्वांगीण, सम्यक धर्म को जीवन में उतारने का अभ्यास करते रहने में हमारा सही मंगल समाया हुआ है। बिना किसी जाति या संप्रदाय के भेदभाव के, सब का सही मंगल इसी में समाया हुआ है। देखें, धर्म का सर्वांगीण सम्यक स्वरूप क्या है?

हमारी वाणी सम्यक हो। वाणी सम्यक तब होती है जबकि हम झूठ-कपट, गाली-गलौज, कटु-कठोर, चुगली-निंदा और ऊल-जलूल बकवास भरे वचनों से वस्तुतः छुटकारा पा लेते हैं।

हमारे शारीरिक कर्म सम्यक हों। शारीरिक कर्म सम्यक तब होते हैं जबकि हम हिंसा-हत्या, चोरी-जारी, नशे-पते आदि के दुष्कर्मों से यथार्थतः मुँह मोड़ लेते हैं।

हमारी आजीविका सम्यक हो। आजीविका तब सम्यक होती है जबकि हम अपने जीवनयापन के साधनों को वास्तविकता के स्तर पर शुद्ध करते हुए छल-छद्म, जालसाजी, तस्करी-चोरी को सर्वथा त्यागते हैं और ऐसा कोई व्यवसाय नहीं करते जिससे कि धन-संचय की तीव्र लालसा के वशीभूत होकर अन्य अनेकों को हानि पहुँचायें।

हमारा प्रयत्न सम्यक हों। प्रयत्न तब सम्यक होते हैं जबकि हर प्रयत्न सचमुच एक ऐसा व्यायाम बन जाता है जिससे कि हमारा मन दुर्गुण-विपन्न और सद्गुण-संपन्न हो।

हमारी जागरूकता सम्यक हो। जागरूकता तब सम्यक होती है जबकि हम अपने कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों के प्रति सजग सचेत रहने के वास्तविक अभ्यास में जुट जाते हैं।

हमारी समाधि सम्यक हो। समाधि तब सम्यक होती है जबकि सतत अभ्यास द्वारा हम अपने चित्त को किसी सत्य आलंबन के सहारे देर तक सजग, समाहित रख सकने में सचमुच सफल होते हैं।

हमारे संकल्प सम्यक हों। संकल्प तब सम्यक होते हैं जबकि हम अपनी चित्तधारा पर से हिंसा, क्रोध, द्वेष, दौर्मनस्य की दुर्वृत्तियां वास्तव में दूर कर देते हैं।

हमारे दर्शन सम्यक हो। दर्शन तब सम्यक होता है जबकि हम बुद्धि-किलोल से छुटकारा पाकर परम सत्य का यथार्थतः दर्शन कर लेते हैं।

दर्शन माने फिलॉस्फी नहीं समझें। अन्यथा किसी मत-मतांतर की फिलॉस्फी के सिद्धांतों का चिंतन-मनन ही हमारे लिए सम्यक दर्शन बन बैठेगा और इस प्रकार मिथ्या दर्शन में उलझे रह जायेंगे। दर्शन माने साक्षात्कार। परंतु साक्षात्कार का भी अर्थ यह नहीं कि बार-बार के निदिध्यास द्वारा यथार्थ से सर्वथा दूर किसी कल्पनाप्रसूत रंग-रोशनी, रूप-आकृति को बंद आंखों से देख कर इस मिथ्यादर्शन को ही सम्यक दर्शन मानने लगें। दर्शन माने सत्य की स्वानुभूति। अपने ही भीतर स्थूल सत्य से आरंभ करके सूक्ष्म से सूक्ष्मतर सत्यों की स्वानुभूति करते हुए जब परम सत्य की स्वानुभूति होती है तो ही दर्शन सम्यक होता है। सम्यक दर्शन के इस अनुभूतिजन्य धरातल पर जो ज्ञान होता है वही ज्ञान सम्यक है। अन्यथा बुद्धि-किलोलजन्य मिथ्या ज्ञान है। सम्यक दर्शन और सम्यक ज्ञान एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों की उपलब्धि साथ-साथ होती है। सम्यक दर्शन हो जाय तो सम्यक ज्ञान, सम्यक बोध हो ही जाता है जो कि अभ्यासजन्य धर्म का चरमोत्कर्ष है।

सतत अभ्यास करते-करते सर्वांगीण धर्म को जब हम सम्यक बनाते हैं, परम परिशुद्ध करते हैं, तो जीवन-व्यवहार में स्वभावतः सर्वतोमुखी उन्नति होती है। कायिक ,वाचिक और मानसिक कर्मों में से अशुद्धियां दूर होती हैं। जीवन कृतकृत्य होता है, धन्य होता है। त्रिविध आचरण स्वतः सुधरते जाते हैं। चारित्र्य सम्यक होता जाता है। यदि ऐसा न हो और केवल किसी संप्रदाय-विशेष की रूढ़ि-परंपराओं का पालन करते हुए अपने आपको सम्यक चारित्र्यवान कहें तो धोखे में पड़ते हैं। चित्त विकारों से मुक्त हो नहीं, व्यवहार में सौम्यता आये नहीं, पारस्परिक बर्ताव में शुद्धि आये नहीं, फिर भी सम्यक चारित्र्य कहें तो मिथ्या को ही सम्यक मान लेने की भ्रांति होगी।

धर्म की तीन मंजिलें हैं – परियत्ति, पटिपत्ति, पटिवेध। परियत्ति माने धर्म के शास्त्रीय ज्ञान की निपुणता। पटिपत्ति माने धर्मपंथ का स्वयं प्रतिपादन। पटिवेध माने मार्ग का अनुशीलन करते हुए, सारी विघ्न-बाधाओं का भेदन कर धर्म के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेना। धर्म का परियत्ति अंग निरर्थक नहीं है। परंतु वह सार्थक भी तभी होता है जबकि उससे आगे पटिपत्ति और पटिवेधन का प्रयोग कर लिया जाय। धर्म महज शास्त्रीय ज्ञान में नहीं, आचरण में है। धर्म सैद्धांतिक मान्यता में नहीं, सिद्धांतों का जीवन जीने में है। धर्म आचरण में उतरे तो ही परिपूर्ण होता है। सम्यक होता है। अन्यथा मिथ्या ही मिथ्या रहता है। चाहे उसे बौद्ध कहें या जैन, ईसाई कहें या हिंदू, मुस्लिम कहें या यहूदी, पारसी कहें या सिक्ख या और कुछ।

किसी भी संप्रदाय के धर्मगुरु से पूछ देखें। वह यही कहेगा कि धर्म की उपरोक्त बातें यानी काया, वाणी और चित्त के कर्मों को शुद्ध करने की बातें हमारे ही धर्म की हैं। कोई नहीं कहेगा कि ये हमारे धर्म के बाहर की बातें हैं। तो यह बात सब के धर्म की हुई। सार्वजनीन हुई। संप्रदाय-विशेष की नहीं। परंतु साथ-साथ हम यह भी देखते हैं कि सभी संप्रदायों में ऐसे लोगों की संख्या ही अधिक है जो कि अपने आपको धर्मवान तो समझते हैं परंतु धर्म के सार को धारण नहीं करते। धर्म को जीवन में नहीं उतारते। अतः यह रोग सार्वजनीन है, विश्वव्यापी है। किसी एक संप्रदाय-विशेष का नहीं।

हम धर्म का जीवन नहीं जी रहे हैं यह जितना बुरा है उससे हजारों गुना बुरा यह भ्रम है कि वस्तुतः हम धर्म का ही जीवन जी रहे हैं। विचित्र विडंबना है। रोगी होते हुए भी अपने आप को निरोग मान रहे हैं। अजीब नशा छाया है हम पर। सब संप्रदाय वालों पर एक-सा नशा। सभी कुओं में भांग पड़ी है। किसी भी संप्रदाय के हों, अपने-अपने संप्रदाय की किसी विशिष्ट वेश-भूषा को धारण कर लें अथवा अपनी परंपरा का कोई रूढ़ कर्मकांड पूरा कर लें अथवा अपने संप्रदाय के शास्त्रों द्वारा उद्घोषित किसी दार्शनिक सिद्धांत की मान्यता अपने मन में कट्टरता से भर लें और महज इसी से समझ बैठें कि हम धर्म का जीवन जी रहे हैं; भले हमारे दैनिक जीवन में धर्म का नामोनिशान न हो। धर्म के नाम पर कितना गहरा नशा है यह। पश्चिम के किसी समझदार आदमी ने कहा है – धर्म अफीम का नशा है। जो धर्म नहीं है उसे धर्म मानकर जीने में अफीम का ही नहीं, बल्कि उससे भी बड़ा नशा है। अफीम का नशा तो समय पाकर उतर जाता है, परंतु इस मिथ्या धर्म के नशे में डूबा हुआ व्यक्ति सारा जीवन बेहोशी में बिता देता है। नशा उतरने का नाम नहीं लेता। रोज-ब-रोज तेज हुए जाता है।अपना तथा सबका सही मंगल चाहने वाले व्यक्ति को इस नशीले खतरे से बचना चाहिए और यह भलीभांति समझ लेना चाहिए कि धर्म की चरम परिणति, उसका अंतिम लक्ष्य, उसका एकमात्र उद्देश्य उसे जीवन में उतारने में है। जो धर्म पढ़ा-सुना गया, सोचा-समझा गया; पर धारण नहीं किया गया वह सम्यक नहीं है, परिपूर्ण नहीं है, अभी कच्चा है। कच्चे घड़े के सहारे नदी पार

करना खतरनाक है। उसे पकाएं। हजार कठिनाइयों के बावजूद भी उसे धारण करने के अभ्यास को ही महत्त्व दें। कहीं ऐसा न हो जाय कि अभ्यास के रास्ते कोई मील का पत्थर हमें रोक ले, कोई मृग-मरीचिका हमें भ्रांत कर दे और हमारी प्रगति रुक जाय। जिस धर्म को हम धर्म मान रहे हैं वह सम्यक है अथवा मिथ्या, इस हकीकत को बार-बार परखते रहें और परखने का एक मात्र तरीका यही है कि धर्म जीवन में उतर रहा है या नहीं। हमारे दैनिक व्यवहार में आ रहा है या नहीं? हमारा भला इसी में है कि जब हम देखें हमारे जीवन में धर्म नहीं उतर रहा है तो भले ही हम ऐसी वेश-भूषा धारण करते हैं या वैसी, ऐसे क्रियाकांड करते हैं या वैसे, इस संप्रदाय में दीक्षित हैं या उसमें, ऐसी दार्शनिक मान्यता मानते हैं या वैसी, आत्मवादी हैं या अनात्मवादी, ईश्वरवादी हैं या अनीश्वरवादी, द्वैतवादी हैं या अद्वैतवादी; हम इस बात को स्वीकारते हुए जीएं कि हम धर्मवान नहीं हैं, कदापि नहीं हैं। जीवन में उतरे तो ही धर्म है, वरना धोखा है। हम महज तर्क ,श्रद्धा, रूढ़िपालन, और दार्शनिक मान्यता के स्तर पर ही धर्म को स्वीकार कर के न रह जायँ, बल्कि वास्तविकता के स्तर पर उसे जीवन में उतारें – तो ही धर्म सम्यक है, तो ही कल्याणकारी है, तो ही मंगलकारी है।

अधिक जानकारी के लिए-

संपर्क : **विपश्यना विशोधन विन्यास**

धम्मगिरि, इगतपुरी- ४२२ ४०३, जिला- नाशिक , महाराष्ट्र, भारत

फोन: ०२५५३- २४४०७६, २४४०८६, २४४३०२

फैक्स: ०२५५३-२४४१७६.